चंद्रशेखर वेंकट रामन

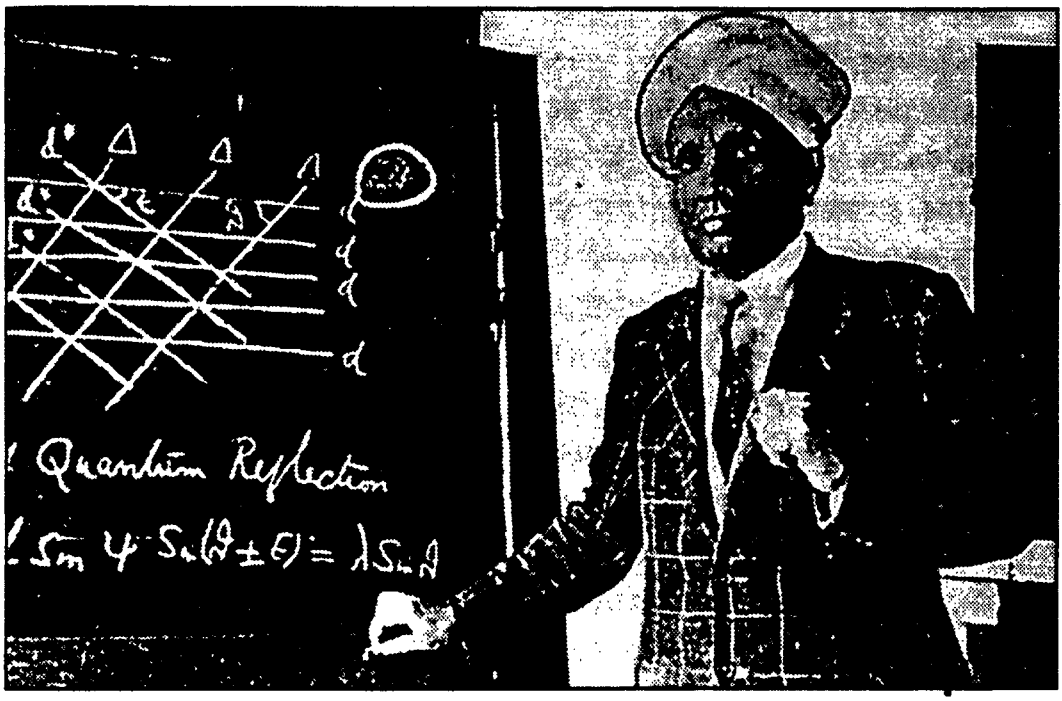

जहां तक पदार्थ की परमाण्विक संरचना का मामला है, सन् 1919 में लॉर्ड रदरफोर्ड के प्रयोगों के बाद से स्थिति अब तक काफी स्पष्ट हो चली है। पदार्थ की मूलभूत संरचना को हम काफी हद तक समझने लगे हैं। लगभग सारे रसायन शास्त्र और भौतिक शास्त्र की नींव परमाण्विक संरचना की हमारी इसी समझ पर रखी हुई है।

प्रकाश का अवशोषण और उत्सर्जन

लेकिन प्रकाश के मामले में स्थिति काफी जटिल है। प्रकाश एक गतिमान विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा है यानी इसके

विद्युतीय तथा चुंबकीय, दोनों क्षेत्र होते हैं। इन दोनों क्षेत्रों की तीव्रता या प्रबलता तरंग के समान हर बिंदु पर बदलती है। यह विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा किसी भी पदार्थ द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से अवशोषित की जा सकती है। अवशोषक पदार्थ के परमाणु इसे फिर से आंशिक या पूर्णरूपेण बाहर निकाल सकते हैं। प्रकाश विकिरण की ऊर्जा का यह अवशोषण और उत्सर्जन परमाणु के इलेक्ट्रॉनों के माध्यम से होता है। लेकिन यह एक सतत प्रक्रिया न होकर क्वांटा या पैकेटों में होती है जिन्हें फोटॉन कहते हैं। हर पैकेट की ऊर्जा उस विकिरण की आवृत्ति पर निर्भर करती है। परंतु इस समझ तक पहुंचने तक एक लंबा समय लगा।

गौर कीजिए कि एक अतिशुद्ध पारदर्शी माध्यम में से एक ही आवृत्ति का प्रकाश गुज़ारा जाए तो क्या होगा? ऐसे में अधिकांश प्रकाश तो उस माध्यम को पार कर जाएगा लेकिन उसका कुछ अंश मार्ग में आने वाले अणुओं व परमाणुओं द्वारा विभिन्न दिशाओं में छितरा दिया जाएगा। उन्नीसवीं शताब्दी में लॉर्ड रैले ने कुछ तरल पदार्थों में प्रकाश के इस छितराव (Scattering) का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि आपतित प्रकाश का तकरीबन एक हज़ारवां हिस्सा छितर जाता है। इस छितराए हुए प्रकाश की तरंग-लंबाई आपतित प्रकाश की तरंग लंबाई जितनी ही होती है।

सन् 1878 में एक जर्मन वैज्ञानिक लोमेल सैद्धांतिक तौर पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि छितराए हुए प्रकाश में एक ऐसा भी हिस्सा होगा जिसकी आवृत्ति, आपतित प्रकाश की आवृत्ति और छितराने वाले माध्यम के आंतरिक दोलनों की आवृत्ति की संयोजी होगी। पर उसके इस निष्कर्ष पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सन् 1923 में एक अन्य जर्मन स्मेकल और 1925 में क्रेमर्स तथा हाइज़नबर्ग ने भी इसी तरह की सैद्धांतिक भविष्यवाणी की कि बिखरने वाले प्रकाश में आपतित प्रकाश की आवृत्ति के अलावा और भी कई आवृत्तियों के प्रकाश मौजूद होंगे। ये आवृत्तियां उस छितराने वाले माध्यम की संरचना पर निर्भर करेंगी। 1927 में डिराक भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे। यानी परिणामी आवृत्ति, आंतरिक और आपतित आवृत्तियों दोनों के या तो योग के बराबर होंगी या इनके अंतर जितनी। इसके बाद तो प्रकाश प्रकीर्णन के दौरान उत्पन्न होने वाली संयोजी आवृत्तियों की खोज ज़ोरों से शुरू हुई। रामन भी इन कामों से अच्छी तरह वाकिफ थे।

रामन का शुरुआती काम

प्रकाश के छितराव की व्याख्या रामन के अध्ययन का केंद्र सन् 1921 से ही बन चुकी थी। इसी साल समुद्र

के नीले रंग और द्रवों में प्रकाश के बिखराव पर उनका एक पर्चा लंदन की प्रसिद्ध रॉयल सोसाइटी तथा बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ। दो पर्चे नेचर पत्रिका में भी छपे। अपने प्रयोगों के दौरान उन्होंने ऐसा छितराव पाया जो रैले छितराव से भिन्न था। उनके इन प्रयोगों की परिणिति आगे चलकर सन् 1928 में 'रामन-प्रभाव' में हुई, जिस पर उन्हें 1930 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला।

'रामन प्रभाव' के अनुसार जब एक ही आवृत्ति का प्रकाश किसी भी पारदर्शी रासायनिक यौगिक में छितराया जाता है तब प्रकाश के कुछ अंशों की तरंग-लंबाई आपतित प्रकाश की तरंग-लंबाई से भिन्न होती है। रामन छितराव को समझने के लिए हमें प्रकाश को कणों (फोटॉन) के रूप में देखना होगा जिनकी निहित ऊर्जा उनकी आवृत्ति के अनुपाती है। जब ये फोटॉन यौगिक के परमाणुओं से टकराते हैं तब अधिकांश फोटॉन अपने प्रारंभिक रूप में ही बिखर जाते हैं। परंतु कुछ स्थितियों में वे परमाणुओं से थोड़ी ऊर्जा प्राप्त करते हैं और कुछ में वे परमाणुओं को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसलिए इन छितराए हुए फोटॉनों की ऊर्जा-स्थिति में परिवर्तन आ जाता है जिसके फलस्वरूप उनकी आवृत्ति भी बदल जाती है। इन बदली हुई आवृतियों के मापन से हम ऊर्जा के आदान-प्रदान की मात्रा का अंदाज़ भी लगा सकते हैं।

रामन का जन्म 7 नवंबर 1888 को दक्षिण भारत के तिरुचिरापल्ली ज़िले के उत्तर में तिरुवनैकावल नामक एक छोटे से गांव में हुआ। उन्हीं दिनों सन् 1857 की क्रांति के बाद राष्ट्रवादी आंदोलन फिर से करवटें लेने लगा था। उस समय पैदा हुए रामन आगे चलकर वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में भारतीय निश्चयात्मकता और स्वावलंबन की एक शानदान मिसाल बने।

रामन के जन्म के तकरीबन चार वर्ष बाद उनका परिवार विशाखापटनम चला गया, और वहां समुद्र तट के निकट रहने लगा। रामन के पिता, चंद्रशेखरन अय्यर की संगीत में, विशेषकर वीणा और वायलिन जैसे वाद्यों में, काफी रुचि थी। संगीत के साथ उन्हें भौतिकी, गणित और अंग्रेज़ी साहित्य से भी विशेष लगाव था। उन्होंने इन विषयों की कई उच्चस्तरीय किताबें भी इकट्ठी की हुई थीं, जिनका वे नियमित अध्ययन करते थे।

इस माहौल का रामन के ऊपर काफी प्रभाव पड़ा और आगे चलकर उनका बहुत सारा वैज्ञानिक कार्य प्रकृति की परिघटनाओं और वाद्यों की ध्वनिकी (Accoustics) पर केन्द्रित रहा। ग्यारह साल की छोटी-सी उम्र में ही उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

जनवरी 1903 में रामन ने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में बी. ए. में दाखिला लिया। उन्होंने अपना मुख्य विषय चुना, भौतिकी। रामन ने यहां कुल चार साल बिताए। विज्ञान के अलावा अंग्रेज़ी साहित्य पर भी उनकी पकड़ काफी गहरी थी। 1904 में अंग्रेज़ी व भौतिकी में स्वर्णपदक के साथ बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्हें इंग्लैंड जाकर पढ़ाई जारी रखने की सलाह दी गई। लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से अयोग्य करार दिए जाने पर वे इंग्लैंड न जा सके। फलस्वरूप रामन ने प्रेसिडेंसी कॉलेज से ही भौतिकी में एम. ए. करने का निश्चय किया। वहां मिली शैक्षिक स्वतंत्रता का उन्होंने भरपूर फायदा उठाया – अपनी खोजी प्रवृत्तियों को ठोस प्रायोगिक रूप देने में। उन दिनों महाविद्यालयों में किसी भी तरह के अनुसंधान की परंपरा न थी। स्थिति शायद आज भी कुछ खास नहीं बदली। लेकिन महत्वाकांक्षा, साहस और उद्यम के धनी रामन अपने प्रयोगमूलक वैज्ञानिक कार्यों में भिड़े रहे।

तभी तो रामन को नोबेल पुरस्कार मिलने पर कुछ यूरोपीय वैज्ञानिकों के बीच जब विवाद छिड़ा तो उनके समकालीन मेघनाद साहा ने कहा था, "यूरोपीय लेखक हमेशा यह कहते नहीं थकते कि हम भारतीयों का झुकाव व्यावहारिक दृष्टिकोण के बजाए तात्विक व्याख्याओं की और अधिक रहता है। जबकि यहां (रामन के मामले में) इसके ठीक विपरीत ही हुआ है। एक भारतीय द्वारा यूरोपीय विद्वानों की उन कल्पनाओं को प्रायोगिक स्वरूप दिया गया है जिन्हें वे स्वयं भी सत्यापित न कर सके।"

सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने कॉलेज के स्पेक्ट्रोमीटर से प्रिज़्म के एक कोण को नापने का प्रयोग किया। प्रयोग के दौरान उन्होंने कोण पर आपतित प्रकाश के प्रतिबिंब का अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि प्रतिबिंबित प्रकाश थोड़ा बहुत फैल जाता है। फैलाव या विसरण की पट्टियों की जांच-पड़ताल करके रामन ने इनका वह कारण खोज लिया जो उस समय के वैज्ञानिक साहित्य में कहीं भी मौजूद नहीं था। इस पर उन्होंने एक पर्चा लिखा और लंदन की 'द फिलॉसॉफिकल मैगज़ीन' में छपने के लिए भेज दिया। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने इस लेख को तैयार करने के दौरान किसी से भी कोई सहायता नहीं ली। उन दिनों रामन का प्रसिद्ध गणितज्ञ और भौतिकविद लॉर्ड रैले से भी पत्र-व्यवहार चला। लॉर्ड रैले का ख्याल था कि रामन प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रोफेसर हैं। वे अपने पत्रों में रामन को ऐसे ही संबोधित करते थे। जनवरी 1907 में 18 वर्ष की आयु में रामन एम. ए. की परीक्षा में

सवप्रथम आए।

रामन को प्रकृति में बसे रंगों, आकारों और उनकी लय ने काफी प्रभावित किया। अपने अध्ययन हेतु उन्होंने तितलियों के हज़ारों नमूने एकत्र किए। इसके अलावा उन्होंने विभिन्न आकृतियों के सैंकड़ों हीरे भी इकट्ठे किए। वे इन हीरों के भौतिक गुणों के मम्मोहन में ऐसे बंधे कि एक समय तो उनकी प्रयोगशाला का हर शोधकर्ता इनके अध्ययन में जुटा था। इसके अलावा रामन ने फूलों, पत्तियों और मणियों के रंगों पर भी विस्तारपूर्वक लिखा। बाद में उन्होंने समुद्र के गहरे नीले रंग की बेहतर विज्ञान सम्मत व्याख्या प्रस्तुत कर इस संबंध में उस समय तक मान्य लॉर्ड रैले के विचारों का खंडन किया। रैले का मानना था कि समुद्र का गहरा नीला रंग आकाश के नीले रंग के कारण है, लेकिन रामन ने इस परिघटना के लिए प्रकाश के आण्विक बिखराव को ज़िम्मेदार ठहराते हुए 'रामन-प्रभाव' की नींव डाली।

कलकत्ता में शोधकार्य

सन् 1907 में रामन वित्त लोक सेवा परीक्षा में बैठे। नियुक्ति की प्रतीक्षा के दौरान रामन ने लोकसुंदरी अम्माल से विवाह करने का निश्चय किया। उसी साल रामन सपत्नीक कलकत्ता चले गए, जहां उन्होंने सह-लेखापाल की हैसियत से वित्त विभाग में काम शुरू किया। हालांकि अगले दस वर्षों तक वे वित्त विभाग की अपनी नौकरी में पूरी तरह से मशगूल रहे, फिर भी कॉलेज के दिनों में शुरू किए गए अपने अनुसंधानों को आगे बढ़ाने के मौकों की तलाश में वे बराबर लगे रहे। उन्होंने बो बाज़ार स्थित द इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस (आई. ए. सी. एस.) को ढूंढ निकाला। यह एसोसिएशन सन् 1876 में महेंद्रलाल सरकार द्वारा स्थापित किया गया था। डॉ. सरकार का सपना था कि एक ऐसी संस्था हो जहां भारतीय वैज्ञानिक बगैर किसी बाहरी हस्तक्षेप के निर्बाध रूप से अपने अनुसंधान जारी रख सकें। एसोसिएशन का विज्ञानमय वातावरण रामन को काफी भाया और 1933 तक वे किसी न किसी रूप में इससे जुड़े रहे।

इस दौरान उनके कई पर्चे संस्थान के बुलेटिन और विदेशी पत्रिकाओं में छपे। संगीत वाद्यों और प्रकाशिकी पर उनके काम ने उन्हें विश्वव्यापी ख्याति दिलाई। उन्होंने धनुर्वाद्यों तथा पटवाद्यों की कार्यप्रणाली समझने में अपना योगदान दिया। यदि किसी धनुर्वाद्य के गज को फेरा जाए या उसके तार को कर्षित किया जाए या किसी पटवाद्य को पीटा जाए तो मूल आवृत्ति वाले स्वर के अलावा उच्च आवृत्ति वाले स्वर भी निकलते हैं। यदि ये उच्च आवृत्तियां मूल आवृत्ति के मुकाबले

दुगनी-तिगुनी इत्यादि हों यानी ऐसे ही अनुपात में बढ़ें तो निकलने वाले अधिस्वरक मधुर होंगे वर्ना शोर मचेगा। हालांकि यह एक विज्ञान सम्मत धारणा है कि जितने भी पटवाद्य हैं वे केवल शोर ही पैदा कर सकते हैं। लेकिन रामन ने पाया कि भारतीय पटवाद्य एकदम भिन्न श्रेणी के हैं और वास्तव में वे भी मधुर उच्च आवृत्ति वाले अधिस्वरक उत्पन्न करते हैं।

इसी तरह उन्होंने वीणा और तानपुरे जैसे प्रसिद्ध भारतीय वाद्य से निकलने वाले स्वरों का भी अध्ययन किया। इन वाद्यों के स्वर मनुष्य की आवाज़ से काफी मिलते-जुलते हैं। उनके स्वरों की गुणता अन्य कर्षित तारवाद्यों के स्वरों की गुणता के मुकाबले काफी उच्च स्तर की होती है। रामन ने एक बहुत ही दिलचस्प खोज की कि इन वाद्यों से ऐसे अधिस्वरक भी निकलते हैं जो ध्वनिकी सिद्धांतों के अनुसार निकलने ही नहीं चाहिए। रामन ने प्रमाणित किया कि इन वाद्यों में प्रयुक्त घुड़च के कारण निकलने वाली ध्वनियां गुणता के हिसाब से काफी संपन्न होती हैं।

इसके बाद रामन के जीवन में एक महत्वपूर्ण और सुखद मोड़ आया। सन् 1914 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप-कुलपति आशुतोष मुखर्जी द्वारा उन्हें पालित प्रोफेसर बनने का प्रस्ताव दिया गया, जो रामन ने 1917 में स्वीकार किया। इसके लिए रामन ने वित्त विभाग की अपनी बढ़िया नौकरी भी त्यागना सहर्ष कबूल किया। वे अब वैज्ञानिक अनुसंधान में पूरी तरह से जुट गए। विश्वविद्यालय और एसोसिएशन दोनों की प्रयोगशालाओं को उन्होंने पूर्णतः अपने नियंत्रण में ले लिया। 1919 में एसोसिएशन के सचिव अमृतलाल सरकार के निधन के बाद रामन मानद सचिव चुन लिए गए। 1917 से 1933 तक रामन कलकत्ता विश्वविद्यालय के पालित प्रोफेसर बने रहे। इसे उनके जीवन का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। इसी दौरान उन्होंने प्रकाश के छितराव पर अपना वह काम शुरू किया जिसकी परिणिति आगे चलकर 'रामन-प्रभाव' में हुई।

रामन बैंगलोर में

1933 में रामन का साथ कलकत्ता से छूटा। वे बैंगलोर स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान (इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंसिस) के निदेशक नियुक्त हुए। यहीं से शुरू हुआ उनके जीवन का प्रशासनिक दौर। उस समय वे वैज्ञानिक ख्याति के शिखर पर थे। वे सर सी. वी. रामन, फेलो ऑफ द रॉयल सोसाइटी और नोबेल पुरस्कार विजेता थे। उन्होंने इंस्टिट्यूट के प्रशासन में कई तब्दीलियां की। उस समय तक इंस्टिट्यूट में केवल रसायन, जीव

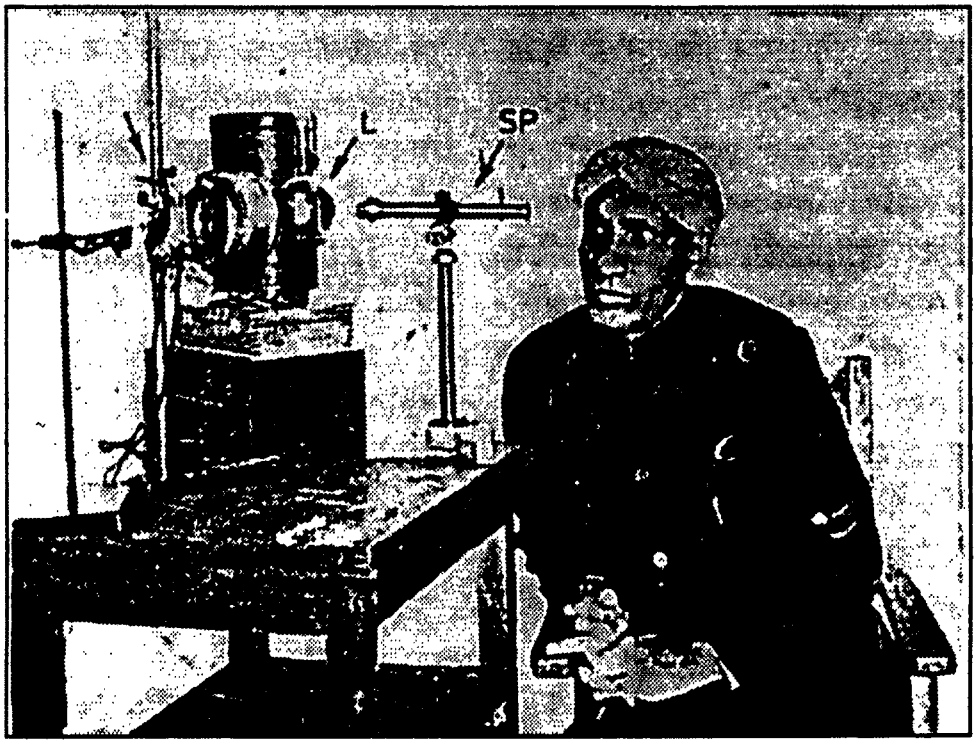

रामन प्रयोग शाला में प्रयोग करते हुए।

रसायन और विद्युत इंजीनियरी के ही विभाग थे। रामन ने अपने अधीन भौतिकी विभाग का काम शुरू किया। नए विभाग के खुलने से कुल धनराशि का एक बड़ा अंश भौतिकी के काम आने लगा जो कि इससे पहले अन्य विभागों को उपलब्ध होता था। चंद प्रतिभाशाली वैज्ञानिक भी अन्य विभागों की अपेक्षा भौतिकी की ओर मुड़े। फलस्वरूप निदेशक और अन्य विभागों के प्रधानों के बीच कुछ तनाव-सा पैदा हुआ।

लेकिन इन सबके बावजूद, महत्वपूर्ण था निदेशक का स्वयं वैज्ञानिक अनुसंधानों में शामिल होना। वे सुबह जल्दी ही प्रयोगशाला पहुंच जाते और अपना प्रशासनिक काम शुरू होने तक वहीं जमे रहते। शाम को भी वे देर तक वहां रुकते, अनुसंधान करते या छात्रों के कार्य का निरीक्षण तथा उनका मार्ग दर्शन करते। संस्थान की नाना प्रशासनिक गतिविधियों में मसरूफ रहने के बावजूद रामन ने विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान किए। उन्हीं दिनों हिटलर के जर्मनी में यहूदियों पर अत्याचारों का सिलसिला शुरू हुआ। हिटलर के आतंक से बचने के लिए कई सुविख्यात वैज्ञानिक जर्मनी

छोड़ कर जा रहे थे। रामन ने कई वैज्ञानिकों को अपने संस्थान में स्थाई पद का निमंत्रण दिया।

रामन के इस प्रशासनिक दौर में हम उनकी मानवीय कमज़ोरियों से वाकिफ होते हैं। उनकी कई प्रशासनिक अक्षमताएं उभरकर सामने आईं और उन्हें काफी मुश्किलातों का सामना करना पड़ा। उनके व्यक्तित्व के इस दुखद पहलू की एक झलक हमें प्रसिद्ध जर्मन भौतिकविद और नोबेल पुरस्कार विजेता मेक्स बोर्न की आत्मकथात्मक पुस्तक 'माइ लाइफ: रिफलेक्शन्स ऑफ ए नोबेल लॉरिएट' में मिलती है।

प्रशासनिक मुश्किलों के कारण 1937 में रामन ने निदेशक का पद त्यागने का निश्चय किया। लेकिन वे भौतिकी विभाग के प्रधान बने रहे। उनके इस निर्णय पर लॉर्ड रदरफोर्ड ने 3 अगस्त 1937 के अपने एक पत्र में लिखा, "मुझे यह जानकार बड़ी खुशी हुई कि संस्थान के निदेशक के रूप में आपको जो चिंताएं थीं, जो व्यवधान थे, अब उनके न होने से आप बैंगलोर में निश्चिंत होकर अपना भौतिकी का काम जारी रख पाएंगे। अब जबकि सब तय हो चुका है तो मुझे विश्वास है कि आप अपना निजी शोधकार्य करेंगे व गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ेंगे।"

रामन रिसर्च इंस्टिट्यूट

1948 में संस्थान से निवृत्ति के पश्चात रामन ने स्वयं की एक संस्था स्थापित की जो अब रामन रिसर्च इंस्टिट्यूट के नाम से जानी जाती है। अपनी इस संस्था से रामन मृत्युपर्यंत जुड़े रहे। वे कुछ-कुछ एकांतवासी हो गए थे और अपना सारा समय निजी अनुसंधान में बिताने लगे। वे फूलों के रंगों और मानव दृष्टि पर अनुसंधान करने में जुट गए। अनुसंधान के उपकरण थे उनकी अपनी आंखें, एक स्पेक्ट्रोस्कोप और अपने बाग के रंग-बिरंगे फूल। उन्होंने इस विषय पर कई लेख प्रकाशित किए। रंगों संबंधी उनका कार्य 'द फिज़ियोलॉजी ऑफ विज़न' नामक उनकी किताब में कलमबद्ध है।

रामन विलक्षण संप्रेषण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने इस बात की ज़रूरत

महसूस की कि भारतीय वैज्ञानिक नियमित रूप से आपस में मिलें और अपने-अपने अनुसंधानों की महत्वपूर्ण जानकारी का आदान-प्रदान करें। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1934 में बैंगलोर में भारतीय विज्ञान अकादमी की स्थापना की थी। अकादमी की गतिविधियों ने सारे विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा। आज भी यह अकादमी विभिन्न क्षेत्रों में उच्चस्तरीय शोध-पत्र प्रकाशित कर एक ऐसा महत्वपूर्ण काम कर रही है जिसकी नींव रामन ने रखी। 21 नवंबर 1970 को रामन की मृत्यु हुई।

समुद्र का नीला रंग और रामन प्रभाव

विज्ञान के इतिहास के अध्ययन के दौरान हम अक्सर पाते हैं कि ज्ञान की प्रत्येक शाखा के विकास का प्रारंभिक बिंदु प्रकृति की किसी-न-किसी परिघटना का अध्ययन कर रहा है। इसकी एक बेहतरीन मिसाल हमें रामन प्रभाव में मिलती है। लॉर्ड रैले ने समुद्र के गहरे नीले रंग का कारण आकाश के नीले रंग का प्रतिबिंब बताया था। सन् 1921 में रामन ऑक्सफोर्ड में होने वाली विश्वविद्यालयीन कांग्रेस में शामिल होने के लिए भारतीय प्रतिनिधि के रूप में चुने गए। यात्रा के दौरान रामन भूमध्य सागर के अद्भुत नीले रंग से अचंभित हुए। उन्होंने एक खास प्रिज़्म की मदद से कुछ प्रयोग जहाज़ पर ही किए और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लॉर्ड रैले की व्याख्या पूर्ण रूप से सही नहीं है। उन्हें यह बात असंगत नहीं लगी कि यह चमत्कार जलकणों द्वारा सूर्य के प्रकाश के बिखराव के कारण संभव है। लेकिन इसके लिए यह ज़रूरी था कि तरल पदार्थों में प्रकाश के विसरण या फैलाव के नियमों की खोज की जाए।

सितंबर 1921 में कलकत्ता लौटते ही उन्होंने इस आशय के अनुसंधान शुरू किए। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जिस विशेष प्रयोजन से ये प्रयोग शुरू किए गए थे उससे कहीं अधिक इस विषय की महत्ता है। ऐसा लगा कि यह शोधकार्य भौतिकी और रासायनिकी की जटिलतम समस्याओं की ओर ले जाएगा। इसी विश्वास ने रामन और उनके सहयोगियों को इस विषय से गहराई से जुड़ने को प्रेरित किया।

शुरुआती प्रयोगों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि परमाणुओं द्वारा प्रकाश का छितराव न केवल गैसों में बल्कि तरल, क्रिस्टलीय तथा अक्रिस्टलीय ठोस पदार्थों में भी होता है। यह भी स्पष्ट हो चला था कि यह मुख्य रूप से माध्यम की आण्विक अस्त-व्यस्तता से उत्पन्न प्रभाव है। इस अस्त-व्यस्तता के कारण माध्यम के कुछ भागों में अधिक परमाणु मौजूद होते हैं और कुछ में कम और छितराव इस असमान घनत्व से संबंधित है। अक्रिस्टलीय ठोस पदार्थों को छोड़कर अन्य मामलों में इस आण्विक अस्त-व्यस्तता के पीछे उष्मा का हाथ माना जा सकता है। प्रयोगों के जो परिणाम निकले उनसे इस विचार की पुष्टि होती दिखाई दी। परंतु तरल पदार्थों में एक ऐसा बिखराव तरल पदार्थों के विषम दिक परमाणुओं के अनुस्थापन से उत्पन्न होता है। यह बिखराव घनत्व संबंधी बिखराव से इसलिए भी भिन्न है क्योंकि इस मामले में बिखरने वाला प्रकाश ध्रुवित होता है जबकि अन्य मामलों में वह अध्रुवित होता है।

यह सारा काम चिरसम्मत तरंग सिद्धांत के आधार पर किया गया था। जो नतीजे निकले, उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय ने फरवरी 1922 में प्रकाश का आण्विक छितराव नामक लेख के रूप में प्रकाशित किया। परंतु इस काम ने इसकी ओर भी साफ इशारा किया कि प्रकाश के बिखराव की व्याख्या से आइंस्टाइन की फोटॉन धारणा कहीं-न-कहीं उभर आएगी और ऐसा हुआ भी।

अप्रैल 1923 में रामन के मार्गदर्शन में उनके सबसे पुराने छात्र के. आर. रामनाथन ने कुछ तरल पदार्थों में विभिन्न ताप व दाब स्थितियों में बिखरने वाले प्रकाश का अध्ययन किया। एक प्रयोग में उन्होंने पानी पर आपतित सूर्य प्रकाश द्वारा उत्पन्न छितराए प्रकाश का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि अपेक्षित बिखराव के अलावा एक अन्य बहुत कमज़ोर बिखराव भी मौजूद है। इस बिखराव की विशेषता है कि छितराए प्रकाश की तरंग लंबाई आपतित प्रकाश की तरंग लंबाई से भिन्न है। उन्होंने जामुनी रंग का अवलोकन किया और देखा कि छितराए प्रकाश में अधिक तरंग-लंबाई का हरा रंग भी मौजूद है। उन्होंने सोचा कि शायद ऐसा पानी की अशुद्धता के कारण हुआ होगा। शुद्ध पानी में प्रयोग दोहराने पर भी यह

छितराव मौजूद था।

1924 में रामन के एक और सहयोगी के. एस. कृष्णन ने इस घटना का अध्ययन अन्य तरह के 65 पदार्थों में किया। परंतु उन्होंने अपना यह शोधकार्य बीच में ही छोड़ दिया। उन्होंने इस परिघटना को 'कमज़ोर विकिरणन' नाम दिया। विकिरणन में भी पदार्थ प्रकाश को सोखकर उसे अधिक तरंग-लंबाई के प्रकाश के रूप में उत्सर्जित करता है।

1927 में कृष्णन फिर से इन प्रयोगों में जुट गए और उन्हें यही नतीजे फिर से प्राप्त हुए। बाद में एक अन्य सहयोगी एस. वेंकटेश्वरन ने इम घटना का सबसे स्पष्ट उदाहरण सूर्य के प्रकाश और ग्लिसरीन के प्रयोग में पाया। बिखरने वाले प्रकाश में नीले के बदले हरा रंग प्राप्त हुआ। परंतु रामन और उनके सहयोगियों को यह मालूम था कि यह परिघटना विकिरणन नहीं हो सकती क्योंकि विकिरणित प्रकाश अध्रुवीकृत (non-polorized) होता है जबकि यह प्रकाश ध्रुवीकृत है। इस आधार पर उन्होंने इसे 'संशोधित प्रकीर्णन' का नाम दिया।

उसी साल के आखिर में ए. एच. कॉम्पटन को नोबेल पुरस्कार दिया गया। यह पुरस्कार उन्हें एक्स किरणों में कॉम्पटन प्रभाव के लिए दिया गया था। कॉम्पटन ने पाया कि अल्प तरंग-लंबाई और उच्च आवृत्ति वाली एक्स किरणों के बिखराव में ये किरणें अपनी ऊर्जा परमाणुओं के इलेक्ट्रॉनों को स्थानांतरित करती हैं। इसके फलस्वरूप बिखरने वाली किरणों की तरंग-लंबाई आपतित एक्स किरणों की तरंग-लंबाई से अधिक होती है। हालांकि 1923 में ही रामन को इस बात का अहसास ज़रूर हो गया था कि पदार्थ के अणुओं और प्रकाश के बीच ऊर्जा का स्थानांतरण क्वांटा में हो सकता है पर अब वे कॉम्पटन के इस सिद्धांत को दृश्य प्रकाश पर प्रयुक्त करने में जुट गए। और, आइंस्टाइन व स्मॉलुचवस्की के क्वांटम सिद्धांत के आधार पर वे प्रकाश के इस नए छितराव की पूरी व्याख्या पाने में सफल हो गए।

1927 में ही रामन ने इस नए छितराव की आम घोषणा की जो अब 'रामन-प्रभाव' के नाम से जाना जाता है। बाद में उन्हें पता

चला कि रूसी वैज्ञानिकों ने भी क्वार्ट्ज़ में यह प्रभाव देखा था। इस प्रभाव की खोज में जो उपकरण इस्तेमाल हुए थे वे काफी साधारण थे। वर्षों बाद रामन ने कहा था, 'विज्ञान का अस्तित्व महंगे उपकरणों में नहीं बल्कि स्वतंत्र चिंतन और कठोर परिश्रम में है।'

इस नई खोज ने काफी धूम मचाई। गणितज्ञों ने इसमें उस नई क्वांटम यांत्रिकी का प्रमाण देखा जो शीघ्र ही न्यूटनीय भौतिकी का स्थान लेने वाली थी। आगे चलकर 'रामन स्पेक्ट्रोस्कोपी' के इस नए क्षेत्र ने पदार्थ संरचना के अध्ययन को विस्तृत व्यावहारिक रूप दिया और एक दशक के अंदर ही 2500 से अधिक रासायनिक यौगिकों का अध्ययन हो पाया। तकरीबन 2000 पर्चे भी लिखे गए। ऐसा अनुमान है कि 1987 तक इन पर्चों की संख्या 45000 से भी ऊपर पहुंच चुकी है।

लेसर की खोज ने रामन प्रभाव पर आगे के मौलिक अनुसंधान को और भी गति प्रदान की। क्योंकि सामान्य प्रकाश समान रूप से ध्रुवीकृत नहीं होता और उसमें विभिन्न तरंग-लंबाई वाले हिस्से होते हैं; जबकि एक लेसर-पुंज का प्रकाश समान तरंग-लंबाई, आवृत्ति और ध्रुवीकरण वाला होता है। 'रामन-प्रभाव' की मदद से जैविक नमूनों का अध्ययन भी संभव हो पाया है।

1930 में रामन को इसी शोध के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। लेकिन इस पुरस्कार को लेकर विवाद खड़ा हो गया। कई लोग इस प्रभाव को रामन-कृष्णन प्रभाव कहते हैं क्योंकि इस खोज के दौरान कृष्णन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा था। हालांकि कालांतर में नोबेल पुरस्कार की घोषणा के बाद रामन ने कृष्णन के इस योगदान को नकारा। अत्यंत प्रतिभाशाली और महात्वाकांक्षी रामन के व्यक्तित्व का वह एक दुखद पहलू था।

यह लेख स्रोत के नवंबर 1989 के अंक से लिया गया है।

स्रोत: एकलव्य द्वारा संचालित फीचर सेवा है जो अखबारों को विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी संबंधी लेख उपलब्ध करवाती है।

रामन एक पहलू यह भी . . . .

भौतिकशास्त्र के प्रोफसर कामेश्वर वाली ने नोबल पुरस्कार विजेता एस. चन्द्रशेखर (रामन के भतीजे) की जीवनी लिखी है। इसमें उन्होंने चन्द्रशेखर के साथ रामन के साथी कृष्णन के बारे में काफी लंबी बातचीत की। सी. वी. रामन के व्यक्तित्व का एक भिन्न पहलू उजागर करते हुए संपादित अंश यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

कामेश्वर वाली: बहुत साल पहले हिन्दुस्तान में मैंने सुना था कि कृष्णन को इस खोज का उचित श्रेय नहीं मिला। दरअसल, उनकी भी इस खोज में बराबर की भागीदारी थी इसलिए उसे रामन-कृष्णन प्रभाव कहलाना चाहिए। आपका क्या ख्याल है इसके बारे में?

चंद्रशेखर: आप जिस तरह की अफवाहों का ज़िक्र कर रहे हैं उनकी वजह से दोनों में संबंध काफी बिगड़ गए थे। मेरा अपना मानना है कि रामन प्रभाव की खोज इसलिए संभव हो पाई क्योंकि दो एकदम मौलिक वैज्ञानिक एक-दूसरे के पूरक रूप में इस सवाल से एक साथ जूझ रहे थे। 1928 में मेरी यही मान्यता थी।

कामेश्वर वाली: आप कृष्णन से आखिरी बार कब मिले?

चंद्रशेखर: मैं और कृष्णन 1951 में मद्रास के हवाई अड्डे पर यूं ही संयोगवश एक-दूसरे से टकरा गए। कुछ दिन बाद हमने साथ में खाना खाया और मेरी कृष्णन से लंबी बातचीत हुई।

कामेश्वर वाली: क्या आपने उससे इस विवाद के बारे में चर्चा की?

चंद्रशेखर: उस बातचीत के दौरान कृष्णन ने कुछ बातें ज़रूर बताईं। अगर आप उस समय की घटनाओं का क्रम देखें तो सबसे पहले 31 मार्च 1928 को 'नेचर' शोध पत्रिका में इस खोज के बारे में एक खत प्रकाशित हुआ था जिस पर रामन और कृष्णन दोनों के दस्तखत थे। फिर 'नेचर' पत्रिका के 5 मई 1928 के अंक में रामन प्रभाव से संबंधित स्पेक्ट्रम और उसकी सही व्याख्या देते हुए खत पर भी रामन और कृष्णन के दस्तखत मौजूद थे। लेकिन इन दो खत के बीच 21 अप्रैल 1928 के 'नेचर' के अंक में एक और खत प्रकाशित हुआ था जिस पर सिर्फ रामन के दस्तखत थे। नेचर में प्रकाशित इस खत को देखकर कृष्णन की समझ में नहीं आया कि रामन ने ऐसा क्यों किया?

कृष्णन के अनुसार बाद में रामन ने खेद व्यक्त किया कि वे इस खत की जानकारी कृष्णन को नहीं दे पाए।

इसी तरह 16 मार्च 1928 को रामन ने अपनी खोज के बारे में एक भाषण दिया। जिसे बाद में उनके नाम से प्रकाशित किया गया।

यदि 16 मार्च का भाषण और 21 अप्रैल को नेचर में छपे खत को छोड़ दिया जाए तो उस समय के सब दस्तावेजों में रामन के साथ कृष्णन का नाम सह-लेखक के रूप में मौजूद है। इस खोज के बारे में पहला विस्तृत ब्यौरा इंडियन जर्नल ऑफ फिज़िक्स [2, नं. 4(1928): 399] में प्रकाशित हुआ, उसमें भी रामन के साथ कृष्णन का नाम है।

कृष्णन का यह मानना था कि रामन ने उसका नाम खोज से बाहर रखने के लिए इन मौकों पर उसके नाम का उल्लेख नहीं किया। उसके बावजूद जहां तक मुझे मालूम है कृष्णन ने कभी भी इस मसले पर कोई बात नहीं की। परन्तु रामन ने कई सार्वजनिक मौकों पर भी कृष्णन की भागीदारी पर सवाल उठाए।

यहां तक कि जब कृष्णन की मौत हुई तो रामन ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को दिए एक साक्षात्कार में बड़ी तल्खी से कहा, "कृष्णन एक अति धूर्त व्यक्ति था और उसने सारी उम्र दूसरे व्यक्ति की खोज का लबादा ओढकर गुज़ार दी।" मैं जितना भी जानता हूं उसके मुताबिक कृष्णन के बारे में ऐसा कथन बिल्कुल भी उचित नहीं है। यही नहीं रामन ने खुद नोबल पुरस्कार पाने के बाद दिए लेक्चर में कृष्णन का कई मर्तबा उल्लेख किया था। जो काफी न्यायसंगत था।

कृष्णन ने 1928 की जनवरी से अप्रैल तक किए शोधकार्य का ब्यौरा अपनी डायरी में दर्ज किया था। कृष्णन की वह डायरी बाद में उनके ही एक साथी रामनाथन के पास सुरक्षित मिली। मैंने इस डायरी की एक प्रति ब्रिटिश रॉयल सोसायटी के संग्रहालय में पहुंचवाई ताकि कम-से-कम भविष्य के इतिहास के लिए ये सब जानकारियां मौजूद रहें।

चंद्रशेखर और कामेश्वर सी. वाली की विस्तृत बातचीत के लिए देखें
'चंद्रा – ए बायोग्राफी ऑफ एस. चंद्रशेखर' लेखक: कामेश्वर सी. वाली, प्रकाशक पेंगुइन।